मगसिर शुक्ल ३, सोमवार, दिनांक १६-१२-१९७४, श्लोक-२-३, प्रवचन-६

दूसरी गाथा का अन्तिम है। **सरस्वती की मूर्ति है।** यहाँ तक चला है न! द्रव्यश्रुत है, वह आत्मा को परोक्ष रीति से बतलाता है। वाणी है न? और केवलज्ञान जो है, वह अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है। अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य परमात्मस्वरूप, उसे केवलज्ञान प्रत्यक्ष देखता है। भावश्रुतज्ञान वह भी एक आत्मा को प्रत्यक्ष देखता है। वह भावश्रुतज्ञान भी सरस्वती की मूर्ति है, केवलज्ञान भी सरस्वती की मूर्ति है और वाणी भी सरस्वती की मूर्ति है।

इस प्रकार सर्व पदार्थों के तत्त्व को.... अर्थात् सर्व पदार्थ के भाव को **बतलानेवाली ज्ञानरूप और वचनरूप अनेकान्तमयी सरस्वती की मूर्ति है।** यह सरस्वती का श्लोक समयसार का है। **सरस्वती के वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी इत्यादिक बहुत नाम हैं।** कहाँ तक यह घिसने का काम चलता है। कितना घिसा इसने। इसे बन्द कर दो। इसे क्या घिस-घिसकर... यह बात पूरी हुई यहाँ।

अब तीसरे श्लोक में क्या कहना चाहते हैं?

श्लोक - ३

ननु-निष्कलेतररूपमात्मानं नत्वा भवान् किं करिष्यतीत्याह -

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये ॥३॥

अथ इष्टदेवतानमस्कारकरणानन्तरं। अभिधास्ये कथयिस्ये। कं? विविक्त-मात्मानं कर्ममलरहितं जीवस्वरूपं। कथमभिधास्ये? यथात्मशक्ति आत्मशक्तेरनति- क्रमेण। किं कृत्वा ? समीक्ष्य तथाभूतमात्मानं सम्यग्ज्ञात्वा। केन? श्रुतेन-

एगो मे सासओ आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥

इत्याद्यागमेन। तथा लिंगेन हेतुना। तथाहि-शरीरादिरात्मभिन्नोभिन्नलक्षण-लक्षितत्त्वात्। ययोर्भिन्नलक्षणलक्षितत्त्वं तयोर्भेदो यथा जलानलयोः, भिन्नलक्षणलक्षि-

तत्त्वं चात्मशरीरयोरिति। न चानयोर्भिन्नलक्षणलक्षितत्त्वमप्रसिद्धम्। आत्मनः उपयोग-स्वरूपो-पलक्षितत्वात्शरीरादेस्तद्विपरीतत्त्वात्। समाहितान्तः करणेन समाहितमेकाग्री-भूतं तच्च तदन्तः करणं च मनस्तेन। सम्यक्-समीक्ष्य सम्यग्ज्ञात्वा अनुभूयेत्यर्थः। केषां तथाभूतमात्मान-मभिधास्ये? कैवल्यसुखस्पृहाणां कैवल्ये सकलकर्मरहितत्त्वे सति सुखं तत्र स्पृहा अभिलाषो येषां, कैवल्ये विषयाप्रभवे वा सुखे, कैवल्यसुखयोः स्पृहा येषाम्॥३॥

निष्कल से अन्यरूप आत्मा को (निष्कल नहीं, ऐसे सकल आत्मा को) नमस्कार करके आप क्या करोगे?

वह कहते है —

चहें अतीन्द्रिय सुख उन्हें, आत्मा शुद्ध स्वरूप।
श्रुत अनुभव अनुमान से, कहूँ शक्ति अनुरूप॥ ३॥

अन्वयार्थ - (अथ) परमात्मा को नमस्कार करने के अनन्तर (अहं) मैं [पूज्यपाद आचार्य] (विविक्तं आत्मानं) कर्ममलरहित आत्मा के शुद्धस्वरूप को (श्रुतेन) शास्त्र के द्वारा (लिंगेन) अनुमान व हेतु के द्वारा (समाहितान्तःकरणेन) एकाग्र मन के द्वारा (सम्यक् समीक्ष्य) अच्छी तरह अनुभव करके (कैवल्य-सुखस्पृहाणां) कैवल्यपद-विषयक अथवा निर्मल अतीन्द्रियसुख की इच्छा रखनेवालों के लिए (यथात्म-शक्ति) अपनी शक्ति के अनुसार (अभिधास्ये) कहूँगा।

टीका - अब, इष्टदेवता को नमस्कार करने के पश्चात् मैं कहूँगा। क्या (कहूँगा)? विविक्त आत्मा को, अर्थात् कर्ममलरहित जीवस्वरूप को (कहूँगा)। किस रीति से कहूँगा? यथाशक्ति-आत्मशक्ति का उल्लंघन किये बिना (कहूँगा)। क्या करके (कहूँगा)? समीक्षा करके, अर्थात् वैसे आत्मा को (विविक्त आत्मा को) सम्यक् प्रकार जानकर (कहूँगा)। किस द्वारा (किस साधन द्वारा)? श्रुत द्वारा —

'ज्ञान-दर्शनलक्षणवाला शाश्वत एक आत्मा मेरा है; अन्य सब संयोग लक्षणवाले भाव, मुझसे बाह्य हैं।'

इत्यादि आगम द्वारा तथा लिङ्ग, अर्थात् हेतु द्वारा (कहूँगा), वह इस प्रकार —

शरीरादि आत्मा से भिन्न हैं, क्योंकि वे भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं। जो भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं, वे दोनों (एक-दूसरे से) भिन्न हैं; जैसे—जल और अग्नि (एक

-दूसरे से) भिन्न हैं; वैसे ही आत्मा और शरीर (दोनों) भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं और दोनों का भिन्न लक्षणों से लक्षितपना अप्रसिद्ध नहीं (अर्थात्, प्रसिद्ध है), क्योंकि आत्मा उपयोगस्वरूप से उपलक्षित है और शरीरादिक उससे विपरीत लक्षणवाले हैं।

समाहित अन्तःकरण से—समाहित, अर्थात् एकाग्र हुए और अन्तःकरण, अर्थात् मन; एकाग्र हुए मन द्वारा, सम्यक् प्रकार से समीक्षा करके-(विविक्त आत्मा को) जान करके-अनुभव करके (कहूँगा)—ऐसा अर्थ है। मैं किसको उस प्रकार के आत्मा को कहूँगा ? कैवल्य सुख की स्पृहावालों को। केवल, अर्थात् सकल कर्मों से रहित होने पर, जो सुख (उपजता है), उसकी स्पृहा (अभिलाषा) करनेवालों को (कहूँगा)। कैवल्य, अर्थात् विषयों से उत्पन्न नहीं हुए—ऐसे सुख की अथवा कैवल्य और सुख की स्पृहावालों को (कहूँगा)।

भावार्थ - श्री पूज्यपादस्वामी प्रतिज्ञारूप से कहते हैं कि मैं श्रुत द्वारा, युक्ति अनुमान द्वारा और चित्त की एकाग्रता द्वारा, शुद्धात्मा को यथार्थ जानकर तथा उसका अनुभव करके, निर्मल अतीन्द्रियसुख की भावनावाले भव्यजीवों को मेरी शक्ति अनुसार शुद्ध आत्मा के स्वरूप को कहूँगा।

विशेष स्पष्टीकरण -

आगम में आत्मा का स्वरूप —

समयसार में कहा है कि —

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि॥ ३८ ॥

दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित आत्मा जानता है कि—'निश्चय से मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानमय हूँ, सदा अरूपी हूँ; कोई भी अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है—यह निश्चय है।[१]'

युक्ति (अनुमान) —

शरीर और आत्मा, एक-दूसरे से भिन्न हैं, क्योंकि इन दोनों के लक्षण[१] भिन्न-

---

१. मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे॥ श्री समयसार, गाथा-३८॥

भिन्न हैं। आत्मा, ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला है और शरीरादि उससे विरुद्ध लक्षणवाले हैं, अर्थात् अचेतन -जड़ हैं। जिनके लक्षण भिन्न-भिन्न होते हैं, वे सब एक-दूसरे से भिन्न होते हैं; जैसे कि जल का लक्षण शीतलपना और अग्नि का लक्षण उष्णपना है। इस प्रकार दोनों के लक्षण भिन्न हैं, इस कारण जल से अग्नि भिन्न है।

जैसे, सोने और चाँदी का एक पिण्ड होने पर भी, उसमें सोना अपने पीताशादि लक्षणों से और चाँदी अपने शुक्लादि लक्षणों से भिन्न-भिन्न हैं — ऐसा जान सकते हैं; वैसे ही जीव और कर्म-नोकर्म (शरीर), एक क्षेत्र में होने पर भी, अपने-अपने लक्षणों द्वारा वे एक-दूसरे से भिन्न ज्ञात हो सकते हैं।[२]

तथा अन्तरङ्ग राग-द्वेषादि विकारीपरिणाम भी वास्तव में आत्मा के ज्ञानलक्षण से भिन्न हैं, क्योंकि राग-द्वेषादिभाव क्षणिक और आकुलता लक्षणवाले हैं; वे स्व-पर को नहीं जानते; जबकि ज्ञानस्वभाव तो नित्य और शान्त-अनाकुल है, स्व-पर को जानने का उसका स्वभाव है; इस प्रकार भिन्न लक्षण द्वारा ज्ञानमय आत्मा, रागादि से भिन्न है—ऐसा निश्चित होता है।[३] *अतः आत्मा, परमार्थ से परभावों से, अर्थात् शरीरादि बाह्यपदार्थों से तथा राग-द्वेषादि अन्तरङ्ग परिणामों से विविक्त-भिन्न है।*

अनुभव - आगम और युक्ति द्वारा आत्मा का शुद्धस्वरूप जानकर, अपने त्रिकाल शुद्धात्मा के सन्मुख होने से आचार्य को जो शुद्धात्मा का अनुभव हुआ है, उस अनुभव से वे विविक्त आत्मा का स्वरूप बतलाना चाहते हैं।

जिसे आत्मा के अतीन्द्रियसुख की ही अभिलाषा है; इन्द्रिय विषयसुख की जिसे अभिलाषा नहीं है, वैसे (जिज्ञासु) भव्यजीवों को ही आचार्य, विविक्त आत्मा का (शुद्धात्मा का) स्वरूप कहना चाहते हैं।

इस प्रकार श्री पूज्यपाद आचार्य आगम, युक्ति, और अनुभव से आत्मा के शुद्धस्वरूप को कहने की प्रतिज्ञा करते हैं।

---

१. बहुत से मिले हुए पदार्थों में से, किसी एक पदार्थ को भिन्न करनेवाले हेतु को लक्षण कहते हैं। - श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका व न्याय दीपिका।

२. श्री समयसार, गाथा २७-२८

३. श्री समयसार, गाथा २९४

आत्मा के पुनः कितने भेद हैं, जिससे 'विविक्त आत्मा'—ऐसा विशेष कहा गया है ? और आत्मा के उन भेदों में किसके द्वारा किसका ग्रहण और किसका त्याग करना योग्य है ?॥३॥

श्लोक-३ पर प्रवचन

निष्कल से अन्यरूप आत्मा को.... कल अर्थात् शरीर। शरीररहित, उससे अन्य रूप अर्थात् सकल आत्मा। अरिहन्त को सकल आत्मा कहा जाता है न ? शरीर सहित। **निष्कल से अन्यरूप आत्मा को (निष्कल नहीं,...)** अर्थात् कि शरीर नहीं। शरीर नहीं ऐसे दूसरे। शरीरसहित ऐसा। शरीर नहीं ऐसे शरीरसहित। **(ऐसे सकल आत्मा को) नमस्कार करके आप क्या करोगे ? वह कहते है —**

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥

टीका - अब, इष्टदेवता को नमस्कार करने के पश्चात् मैं कहूँगा। यह टीका कहीं अमृतचन्द्राचार्य जैसी टीका नहीं है। यह तो साधारण सादी भाषा में है। प्रभाचन्द्र पण्डित की है न। बहुत गम्भीर नहीं है। विविक्त आत्मा को कहूँगा, ऐसा। **विविक्त आत्मा को, अर्थात् कर्ममलरहित जीवस्वरूप को....** भगवान आत्मा कर्म और राग और मलिनभावरहित आत्मा है। उसे मैं कहूँगा। सिद्धस्वरूप है, वह तो प्रगट हुआ है। परन्तु यह आत्मा कर्म और रागरहित उसका वस्तुस्वरूप जो है, ऐसे स्वरूप को मैं कहूँगा।

किस रीति से कहूँगा ? यथाशक्ति-आत्मशक्ति का उल्लंघन किये बिना.... अर्थात् कि मेरी शक्ति प्रमाण **कहूँगा।** ऐसा। सर्वज्ञ जो कहते हैं, इतना तो मैं कहाँ से कह सकता हूँ ? ऐसा आचार्य कहते हैं। मेरी शक्ति है, मैंने अनुभव किया है। रागरहित आत्मा.... राग अर्थात् आस्रव, कर्म अर्थात् अजीव। अजीव और आस्रवरहित जो आत्मा को जाना है, अनुभव किया है, उसे मैं शक्तिप्रमाण कहूँगा। ऐसा कहते हैं। यह यथाशक्ति का अर्थ—मेरी शक्ति प्रमाण।

क्या करके (कहूँगा)? समीक्षा करके, अर्थात् वैसे आत्मा को (विविक्त

आत्मा को) सम्यक् प्रकार जानकर (कहूँगा)। सम-ईक्षा। सम्यक् प्रकार से जानकर। मैंने जाना है आत्मा कैसा है, ऐसा आचार्य कहते हैं। मैंने अनुभव किया है आत्मा कैसा है? आहाहा! ऐसा जो जाना है, मैंने अनुभव किया है, तत्प्रमाण मैं कहूँगा। समझ में आया? **किस द्वारा (किस साधन द्वारा) कहूँगा? श्रुत द्वारा**—फिर नियमसार की गाथा दी है।

एगो मे सासओ आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥

कैसा है आत्मा? **ज्ञान-दर्शनलक्षणवाला....** जिसका लक्षण और जिस लक्षण से जो वस्तु ज्ञात हो, वह ज्ञानदर्शन लक्षण है। आहाहा! ज्ञानदर्शनलक्षण से ज्ञात लक्ष्य द्रव्य-वस्तु, ऐसा वह आत्मा है। विकल्प से और राग से और निमित्त से ज्ञात नहीं होता, ऐसा आत्मा है, ऐसा कहते हैं। प्रथम सम्यग्दर्शन में भी आत्मा स्वयं अपने ज्ञान-दर्शन के लक्षण द्वारा ज्ञात हो, ऐसा वह है। जानना-देखना जिसका लक्षण है। लक्ष्य अर्थात् द्रव्य का। उसके द्वारा ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

शाश्वत एक आत्मा मेरा है;... शाश्वत् त्रिकाल.... त्रिकाल.... त्रिकाल.... ऐसा जो त्रिकाली द्रव्यस्वरूप जो है, वह शाश्वत्, वह ज्ञानदर्शनलक्षण द्वारा ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। ऐसा **शाश्वत एक आत्मा मेरा है;...** ऐसा यहाँ कहते हैं। पर के आत्मा की यहाँ बात नहीं की। आहाहा! ज्ञान और दर्शन जो प्रगट लक्षण है व्यक्त है, उसके द्वारा मेरा आत्मा है, यह ज्ञात होता है। ज्ञात होता है, इस प्रकार मैं बात करूँगा। आहाहा! तो फिर मैं दूसरे को कहूँगा, इसका अर्थ क्या हुआ? कि तुमको भी तुम्हारे ज्ञानदर्शनलक्षण से ज्ञात होता है। परन्तु व्यवहार आवे, तब वही आवे न। दूसरी आवे?

'ज्ञान-दर्शनलक्षणवाला शाश्वत एक आत्मा मेरा है; अन्य सब संयोग लक्षणवाले भाव, मुझसे बाह्य हैं।' अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव होते हैं, वे सब संयोगी लक्षणवाले हैं, स्वभाव लक्षणवाले नहीं। स्वभाव लक्षण से उसका जानना और देखना इस लक्षण द्वारा वह ज्ञात होता है। उसके द्वारा मैंने जाना है और दूसरे जो

पुण्य और पाप के भाव, वे अन्य लक्षणवाले हैं। है न? **अन्य सब संयोग लक्षणवाले भाव, मुझसे बाह्य हैं।** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र को सुनते हुए जो विकल्प हुआ, उस विकल्प से भी मेरी चीज़ तो भिन्न है, कहते हैं। ऐसी तुम्हारी भिन्न है, ऐसा यहाँ तो कहना है। मैं स्वयं ऐसा मैं कहूँगा, वैसा तुम्हारा आत्मा भी उस प्रकार से ही ज्ञात हो, ऐसा है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप है। यहाँ ज्ञान-दर्शन प्रगट है न, तो वह लक्षण लिया है। और उस लक्षण द्वारा मेरा भगवान ज्ञात होता है और जिस प्रकार से जाना है, उस प्रकार से जगत को मैं प्रसिद्ध करता हूँ, कहते हैं। समझ में आया?

इत्यादि आगम द्वारा तथा लिङ्ग, अर्थात् हेतु द्वारा.... अनुमान द्वारा **(कहूँगा)।** अन्वयार्थ में तो **'लिंगेन' अनुमान और हेतु....** ऐसे दो कहे हैं। परन्तु दो नहीं। अनुमान, वही हेतु है। इसमें दूसरा हेतु नया नहीं है। देखो न! वहाँ कहा न? लिंग अर्थात् हेतु द्वारा। वहाँ तो ऐसा कहा है। अर्थ में और दो भरे हैं। **'लिंगेन'** अन्वयार्थ में। **अनुमान और हेतु....** ऐसा कहा। परन्तु अनुमान, वही हेतु। आहाहा! समझ में आया? भाई! धर्म की बातें भारी सूक्ष्म। यह अन्दर वस्तु है—चैतन्यस्वरूप है, आनन्दमूर्ति है, वह मेरे जानने में घिसते है, बस बन्द ही कर दो, घिसने का बन्द कर दो। छुट्टी ही दे दो।

भगवान आत्मा मेरा और तुम्हारा दोनों का, ऐसा कहते हैं। मेरा है, उसे मैंने इस प्रकार से जाना, ऐसा तुमको कहूँगा परन्तु तुम्हें भी इस प्रकार से ज्ञात होगा, ऐसा कहेंगे। आहाहा! यह कोई क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा करने से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा आत्मा का लक्षण ही नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? आत्मा का ज्ञान हो, उसका लक्षण ही अपने ज्ञान से हो, ऐसा उसका लक्षण है। आहाहा! इसका नाम आगमज्ञान है। यह राग की क्रिया.... बहुत जगह आता है। व्यवहारमोक्षमार्ग है, व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है। आता है या नहीं? बहुत कथन है। शब्दकोशवाले ने सब डाले हैं। उसमें कुछ छाँटकर निकालना हो तो भारी मुश्किल पड़े।

साधन व्यवहार है। एक ओर कहे कि एक ही आत्मा मोक्ष का मार्ग है, निश्चय

साधन है। व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है। वापस यह डाला। पंचास्तिकाय में है या नहीं? आहाहा! यहाँ तो एक ही साधन है। सत्य ही वह साधन है। अन्दर ज्ञान और दर्शन द्वारा अन्दर को पकड़ना। ओहोहो! ऐसा ही जाना है और इस प्रकार से मैं कहूँगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जो भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं, वे दोनों (एक-दूसरे से) भिन्न हैं;.... शरीरादि आत्मा से भिन्न है। शरीर, राग, पुण्य और पाप के विकल्प वे सब भगवान आत्मा से भिन्न हैं। आहाहा! **क्योंकि वे भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं।** वे आकुलता और अजीव के लक्षण से ज्ञात हुए हैं। उनका लक्षण ही अलग प्रकार का है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का जो भाव, उसका लक्षण ही, कहते हैं कि आकुलता और राग है। इससे आत्मा ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है नहीं। आहाहा! अलिंगग्रहण में आया है न? कि अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? तो फिर यह सब सुनना और... यह सुनने में भी यह इसे सुनना कि हमारा सुनने से तुझे तू ज्ञात हो, ऐसा तू नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारी भक्ति से तू ज्ञात हो, ऐसा तेरा स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! उसका विकल्प जो उठे भगवान की भक्ति का शुभराग; साक्षात् त्रिलोकनाथ हो, उनकी वाणी सुने तो उस वाणी में ऐसा कहा कि तू यह वाणी और वाणी सुनते हुए होनेवाला विकल्प, उससे तू ज्ञात हो, ऐसा तेरा स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया? गजब! ऐसा मार्ग अकेला निश्चय है, वही मार्ग है। व्यवहार-फ्यवहार है, वह मार्ग है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा है कि शरीरादि, रागादि इसमें सब ले लिया। वे **आत्मा से भिन्न हैं, क्योंकि वे भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं। जो भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं, वे दोनों (एक-दूसरे से) भिन्न हैं;....** उनके लक्षण अलग, इसलिए वे अलग चीज़ हैं। भिन्न लक्षण से वे ज्ञात होते हैं, इसलिए वह भिन्न चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा ज्ञान और दर्शन लक्षण से ज्ञात हो और दया, दान के विकल्प हैं, वह विभाव आकुलता

के लक्षण से ज्ञात वह चीज़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और जिसके लक्षण अलग हैं, वह चीज़ अलग है। उसका लक्ष्य अर्थात् वस्तु। समझ में आया?

जैसे—जल और अग्नि (एक-दूसरे से) भिन्न हैं;.... पानी और अग्नि। **आत्मा और शरीर (दोनों) भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं....** अकेला शरीर डाला, हों! परन्तु पहला तो ऐसा था न, शरीरादि आदि सब। वह तो फिर शरीर में सब उसमें आ जाता है वहाँ शरीर डाला है अकेला। शास्त्र में ऐसा आता है न कि पुण्य और पाप के भाव पुद्गल है, वे पुद्गल के परिणाम हैं। फिर संक्षिप्त करके कहा कि पुण्य-पाप के भाव पुद्गल हैं। कर्ता-कर्म (अधिकार) में आया है। आहाहा!

भगवान आत्मा जानने और देखने के लक्षण से ज्ञात होता है, इसलिए उसका लक्षण अलग। वह अलग चीज़ हुई और रागादि का लक्षण अलग। क्योंकि वे आकुलता और दुःखरूप जिसका लक्षण है और दुःखरूप जो चीज़ है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भाव, वे सब दुःखरूप हैं। वे दुःखरूप के लक्षण से ही ज्ञात हों, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? यह तो मार्ग की मूल चीज़ है।

भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं और दोनों का भिन्न लक्षणों से लक्षितपना अप्रसिद्ध नहीं.... जल और अग्नि की भाँति। **वैसे ही आत्मा और शरीर (दोनों) भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं....** भगवान आत्मा और पुण्य दया, दान, व्रत के भाव पुण्य; हिंसा, झूठ का भाव पाप और शरीरादि अजीव, इन तीनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। अतः जिसका लक्षण भिन्न, वह वस्तु भिन्न हुई। वह वस्तु एक नहीं रही। आहाहा! यह तो समझ में आये ऐसी बात है। इसमें ही सब मर्म भरा हुआ है। आहाहा!

क्योंकि आत्मा उपयोगस्वरूप से उपलक्षित है.... देखा! भगवान आत्मा तो जानने-देखने के उपयोग व्यापार से ज्ञात हो, ऐसा है। जानने-देखनेरूपी उपयोग, उससे ज्ञात हो, ऐसा है। उसका लक्षण तो यह है। **शरीरादिक उससे विपरीत लक्षणवाले हैं।** आहाहा! शरीर की किसी क्रिया से आत्मा ज्ञात हो या राग की क्रिया से आत्मा ज्ञात हो, इन दोनों के लक्षण अत्यन्त भिन्न हैं। समझ में आया? तो फिर यह व्यवहार साधन है, यह कहाँ रहा? शास्त्र में आता है। यह तो उस समय राग की मन्दता की जाति कितनी

कैसी थी, उतना बतलाने के लिये उसे व्यवहार साधन का आरोप दिया है। आहाहा! ऐसी बातें भारी कठिन पड़े।

यहाँ तो आठ वर्ष की लड़की हो और सामायिक करे दो-चार-पाँच। एक आसन पर पाँच सामायिक। हो गयी सामायिक। और सेठिया दे उसे.... क्या कहलाता है? प्रभावना। प्रभावना-प्रभावना। आहाहा! दोनों को हो गया धर्म। अरे! भाई! कहाँ.... अभी सामायिक किसे कहना? वीतराग लक्षण से लक्षित तो सामायिक है। और वह आत्मा ज्ञान-दर्शन से लक्षित हो, उसमें स्थिर हो, उसका नाम सामायिक है। अब यह ज्ञानलक्षण से ज्ञात हो, वह चीज़ क्या है, उसकी ही अभी खबर नहीं होती और उसे हो गयी सामायिक और उसे हो गये प्रौषध, प्रतिक्रमण।

मुमुक्षु : भूतकाल में तो होते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....भाई! गत काल में होते थे?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते थे। आहाहा!

अरे! इसकी जाति न जगे, तब तक धर्म कैसे हो? यह पुण्य-पाप के भाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, ये सब भाव तो रागभाव है। आहाहा! यहाँ कहा न? **शरीरादिक उससे विपरीत लक्षणवाले हैं।** राग का और चैतन्य का दोनों का लक्षण ही विपरीत है। आहाहा! यह तो शान्ति से समझने जैसी बात है, बापू! यह तो कूदकर एकदम यह किया और यह किया और यह किया.... आहाहा!

बहुत से जीव अभी ऐसे के ऐसे कमाने में और कमाने में (जीवन) व्यतीत करते हैं। अर्थात् धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य भी नहीं उन्हें तो। आहाहा! ४०-४० वर्ष ४५-५० वर्ष उसमें और उसमें रुकते हैं। यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ.... यह करूँ। और उसे दिखाने में भी ऐसा आवे कि इसमें ऐसे पैसे इकट्ठे किये, इसने ऐसा किया, तब मुझे भी ऐसा करना। आहाहा! ऐसे पाप के परिणाम में तो बहुत समय गया। धर्म तो एक ओर रहा अभी। परन्तु उसे जो राग की मन्दता श्रवण करने के लिये चाहिए, निवृत्ति के

लिये राग की मन्दता (चाहिए), उसका भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा! तो जो पुण्य, अभी राग की मन्दता का भाव जो पुण्य कि जिससे आत्मा ज्ञात नहीं हो, ऐसे पुण्य का भी जहाँ ठिकाना नहीं। आहाहा! अरेरे! ४०-४०, ५०-५०, ६०-६० वर्ष ऐसे का ऐसा यह किया.... यह किया.... यह भरा... यह किया... ऐसे पाप के परिणाम... आहाहा! भाई! उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता। उससे आत्मा को नुकसान होता है। उससे आत्मा को लाभ कैसे होगा? आहाहा!

मुमुक्षु : दान करे तो लाभ हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब निवृत्ति में जरा ऐसा करे—राग की मन्दता दान में, दया में कुछ करे, वह तो अभी पुण्य है। आहाहा! यह कहीं धर्म नहीं। वह धर्म का लक्षण नहीं। आहाहा! करोड़ों रुपये दान में दे। वह बाहर ख्याति की आशा से नहीं, तो भी वह राग की मन्दता है। और ख्याति की आशा से दे कि मैंने कुछ किया, मैं कुछ करता हूँ, ऐसा लोग मुझे जाने, वह भाव तो पाप है। चन्दुभाई! आहाहा! यह तो जिस प्रकार से होगा, उस प्रकार से माल आयेगा। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहना है कि कितनों को तो अभी धर्म तो एक ओर रहा, परन्तु पुण्य के परिणाम करने का अवसर जिसे नहीं। आहाहा! उसे कहाँ उतारा करना है? समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि तेरे हित के लिये तो साधन ज्ञान और दर्शन, वह साधन है। आहाहा! यह जानने-देखने के लक्षण से अन्दर में देख, तब उसे धर्म होता है, तब उसे आत्मा ज्ञात होता है, तब उसे आत्मा का ज्ञान होता है, तब उसे आत्मा की श्रद्धा होती है। आत्मा में आत्मा की श्रद्धा और आत्मा का ज्ञान होना चाहिए न? वह कब हो? कि जैसा यह भगवान पूर्णानन्द है, उस ओर ज्ञान-दर्शन को उन्मुख करे, स्वसन्मुख करे, (तब होता है)। आहाहा! समझ में आया? अभी तो परसन्मुख के पाप के परिणाम से परसन्मुख के पुण्य परिणाम में आने की ही जिसे दिक्कत। आहाहा! गजब बात भाई यह तो!

कहते है कि दोनों लक्षण ही अलग हैं। व्यवहाररत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव, पंच महाव्रत और बारह व्रत का भाव और शास्त्र-श्रवण और शास्त्र की

ओर के रागवाला ज्ञान, ये तीनों भाव आत्मा के जानने-देखने से प्रगट होता प्रभु, उसके लक्षण से इनका लक्षण है। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा! उसमें अभी तो देखो न ऐसा सुनते हैं कि किसी को हार्टफेल हो गया, किसी को कैंसर हुआ। छह महीने में ज्ञात हुआ, वहाँ तुरन्त उड़ गया। वह क्या कहते हैं? ब्लड कैंसर। फिर यह किसी का यह (सुना), हेमरेज हुआ। आहाहा! भाई! वह तो जड़ की स्थिति हो, उस उस काल में उसका वैसा होना हो, वह होता ही है। उसमें आत्मा को क्या है? आहाहा!

भगवान इस स्थिति में भी ज्ञान और दर्शन से ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है। वह चीज़ यहाँ विघ्न नहीं करती, वहाँ नजर न करे तो। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि नजर जहाँ जानी है, वह नजर स्वतन्त्र है। आहाहा! समझ में आया? उसे ऐसे रोग और रोग की ओर का विकल्प है, वह भी अवरोधक नहीं है, स्वभाव सन्मुख जाये तो। आहाहा! नारकी में सातवें नरक में उसकी नरक की पीड़ा। भगवान जाने और उसने भोगी है। आहाहा! भूल गया। घड़ीक में कुछ आया न। यह वेदना... इस वेदना के काल में सम्यग्दर्शन पाता है। आहाहा! कारण कि वेदना और वेदना का संयोग, उसका लक्षण ही अलग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आहाहा! भले वह वेदना हो और शरीर में वे संयोग भी प्रतिकूल हों, परन्तु उन दोनों के लक्षण भिन्न चीज़ है। क्योंकि वह भिन्न है, इसलिए दोनों के लक्षण भिन्न हैं। और उससे भगवान आत्मा... आहाहा! भिन्न है, कहते हैं। बाबूभाई! यह राग के भाव और देह की स्थिति की दशा, दोनों के लक्षण से प्रभु का लक्षण भिन्न है। उस लक्षण को वहाँ रूकावट नहीं। यदि लक्षण से लक्ष्य को रोके, लक्षण में लक्ष्य को रोके तो कोई रूकावट नहीं। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? जानने-देखने के भाव को, भाववान यह वस्तु है, उसमें रोके तो उसे कोई रूकावट नहीं है। ऐसी उसकी चीज़ ही है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

सातवें नरक की रव रव नरक की अपरिठाणा की पीड़ा और यह संयोग, सुनते हुए यह चिल्लाहट मचा जाये। वेदनायें भोगी, भगवान ने जानी, तथापि वह वेदना का काल होता है और शरीर भले हो ऐसे संयोग में.... आहाहा! उस काल में भी उसके

लक्ष्य से नहीं पहिचानना और आत्मा के लक्षण से पहिचाने, वह लक्षण ही अलग चीज़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भिन्न लक्षणों से लक्षित हैं.... आहाहा! **दोनों का भिन्न लक्षणों से लक्षितपना अप्रसिद्ध नहीं....** देखा? है न? **(अर्थात्, प्रसिद्ध है)...** आहाहा! राग का लक्षण आकुलता और भगवान का लक्षण ज्ञान-दर्शन.... आहाहा! दो लक्षण प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध हैं, प्रसिद्धि प्राप्त हैं। आहाहा! **क्योंकि आत्मा उपयोगस्वरूप से उपलक्षित है....** आहाहा! जानने-देखने के भाव से-पर्याय से-यह उपलक्षित अर्थात् लक्ष्य में आता है। उसके समीप में, उससे जाया जाता है। जानने-देखने के लक्षण द्वारा उपलक्षित अर्थात् स्वरूप में समीप जाया जाता है। आहाहा! समझ में आया? उस काल में रागादि और शरीरादि होने पर भी उनके लक्षण अलग हैं। इसलिए उनका लक्ष्य (ज्ञान) करके छोड़ दे। और जिसका लक्षण जानना-देखना है, उसका लक्ष्य कर लक्षण द्वारा (तो) ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है। आहाहा! बातें तो बहुत सरल हैं।

श्रीमद् ने कहा है न, सत् सत् सरल है, सत् सहज है, सत् सर्वत्र है। आता है न भाई? पहले शुरुआत में आता है। सत् सहज है। आहाहा! सत् सर्वत्र है, सत् सत् है। आहाहा! परन्तु उसको बतानेवाला सत्समागम... इसे सत् मिले नहीं। यह सत् है, ऐसा उसे बतानेवाले। आहाहा! समझ में आया? है न? ...भाई! कहा गया? ऐसा है परन्तु इस सत् को बतलानेवाले, जनानेवाले मिले नहीं। इसका अर्थ वहाँ इसे लक्ष्य में लेनेवाला स्वयं नहीं हुआ, इसलिए इसे लक्ष्य में देनेवाले मिले नहीं ऐसा।

ऐसे तो भगवान की वाणी में समवसरण में अनन्त बार सुना है। भगवान की वाणी-भगवान की वाणी सुनी है। परन्तु उसे जिस लक्षण से जीव को जानना चाहिए, वह इसने नहीं जाना, इसलिए इसने सुना ही नहीं। आहाहा! इसे सुनने में जो बात आयी थी कि स्व का आश्रय कर तो तुझे हित होगा। यह नहीं किया। उस वाणी में ऐसा कहा कि हमारा आश्रय करने से तू तुझे नहीं मिलेगा। आहाहा! समझ में आया? तेरा लक्षण जो है तेरा, उससे मिलेगा। इसका अर्थ कि तेरे आश्रय से तू मिले, ऐसा है। आहाहा! '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' कहा न? इसका अर्थ यह है। जानने के-देखने के जो भाव हैं, वह लक्षण तो

जीव का है। उस लक्षण को पर में जोड़ दिया, राग में, पुण्य में। वह तो पर के लक्षण में इस जीव का लक्षण वहाँ जोड़ दिया। यह तो विपरीत किया। समझ में आया?

जिसका लक्षण है, उसके लक्ष्य में लक्षण को न ले जाकर, जिसका लक्षण वह नहीं; रागादि का लक्षण है ज्ञान—जानना-देखना? आहाहा! वहाँ लक्षण इसका (ऐसा) उसे लक्ष्य करना चाहिए। उसके बदले जिसका लक्षण नहीं, उसमें लक्षण को-ज्ञान की पर्याय को वहाँ जोड़ दिया। आहाहा! ऐसा कहते हैं। भिन्न भाव में जिसने स्व के लक्षण को जोड़ दिया। समझ में आया? ऐसा कैसा उपदेश! सवेरे उत्पाद-व्यय-ध्रुव का चले। यह और ऐसा चले। इन दो के लक्षण विपरीत हैं। आहाहा! शब्द भले थोड़े परन्तु इसके भाव में क्या है? समझ में आया?

समाहित अन्तःकरण से.... कहेंगे, ऐसा कहते हैं। **समाहित अन्तःकरण से—समाहित, अर्थात् एकाग्र हुए और अन्तःकरण, अर्थात् मन; एकाग्र हुए मन द्वारा, सम्यक् प्रकार से समीक्षा करके....** सच्चे प्रकार से आत्मा को **(विविक्त आत्मा को) जान करके....** आहाहा! **अनुभव करके (कहूँगा)....** आहाहा! भगवान ने कहा है, इसलिए कहूँगा, ऐसा नहीं। श्वेताम्बर में तो ऐसा आता है। '**सुयं मे आउसं तेण भगवया**'। हे आयुष्यवन्त! मुझे भगवान ने ऐसा कहा था, वह मैं तुझे कहूँगा। ऐसी शैली ही उसमें आती है। पहली शुरुआत आचारांग की। यहाँ कहते हैं कि भगवान ने मुझे कहा है, इसलिए कहूँगा—ऐसा नहीं। आहाहा! मेरा भगवान अनुभव में आया है, इसलिए में कहूँगा। आहाहा! बात-बात में अन्तर है। अन्तर का अन्तर कहाँ है, वह इसे जानना चाहिए। जेठाभाई! आहाहा! आचारांग के पहले शब्द से उठाया। पहला पद '**सुयं मे आउसं तेण भगवया**'। वह तो कल्पित रचना की है। वह कहीं भगवान की वाणी नहीं है। परन्तु इस प्रकार कही है। हे जम्बू! सुधर्मस्वामी कहते हैं। भगवान ने मुझे ऐसा कहा है, वह मैं तुझे कहूँगा।

यहाँ कहते हैं, मैंने मेरे आत्मा को एकाग्र मन द्वारा जाना, विकल्परहित जाना। आहाहा! ऐसा अनुभव कर कहूँगा **ऐसा अर्थ है।** है न पाठ? '**समाहितान्तःकरणेन, सम्यक्-समीक्ष्य**' मैं कहूँगा। आहाहा! अब मैं किसके लिये कहूँगा? ऐसा कहते हैं।

है ? **मैं किसको उस प्रकार के आत्मा को कहूँगा ?** आहाहा ! ऐसा जो आत्मा भिन्न लक्षण से ज्ञात हो ऐसा अर्थात् अपने ज्ञान-दर्शन के लक्षणसे ज्ञात हो ऐसा, ऐसे को अनुभव कर मैं कहूँगा। परन्तु किसके लिये ? आहाहा !

कैवल्य सुख की स्पृहावालों को। जिसे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की स्पृहा है, और भावना है। आहाहा ! है न ? पाठ में है न, देखो न ! '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' आहाहा ! जिसे विषय के सुख की अभिलाषा छूट गयी है। आहाहा ! जिसे इन्द्र के इन्द्रासनों में इन्द्राणियों के साथ विषय की वासना, वह भी जिसके हृदय में से छूट गयी है। आहाहा ! देखो यह ! ऐसे सुननेवाले के लिये कहते हैं। समझ में आया ? श्रीमद् में भी आता है 'काम एक आत्मार्थ का, दूजा नहीं मन रोग।' कहते हैं, '**कैवल्यसुखस्पृहाणां**' अकेला आत्मा का आनन्दस्वरूप, उसकी जिसे स्पृहा है। जिसे पुण्य का भाव है, जिसे पुण्य के फल में स्वर्ग की इच्छा है, ऐसे के लिये यह बात नहीं करूँगा। आहाहा ! समझ में आया ?

मैं किसको उस प्रकार के आत्मा को कहूँगा ? कैवल्य सुख की स्पृहावालों को। केवल, अर्थात् सकल कर्मों से रहित होने पर, जो सुख (उपजता है), उसकी स्पृहा.... अर्थात् पूर्ण आनन्द की स्पृहा। आहाहा ! अतीन्द्रिय पूर्ण आनन्द की जिसे स्पृहा है, अभिलाष है, जिज्ञासा है, ऐसे श्रोताओं के लिये मैं यह कहूँगा, ऐसे जैसे-तैसे सुनने बैठे और सुने, पुण्य की इच्छावाले हैं, पुण्य के फल को भोगने के भाववाले हैं, उन श्रोता के लिये यह वाणी नहीं है, कहते हैं। आहाहा !

कैसी शैली से ग्रन्थकार भिन्न-भिन्न शास्त्र रचकर भिन्न-भिन्न हेतु से इस बात को सिद्ध की है। भले यह समाधितन्त्र ऐसे छोटा ग्रन्थ कहलाता है.... समझ में आया ? परन्तु इसके भाव, उन भाव में.... यह तो भगवान के पास गये थे। इनकी वाणी में तो बहुत ही गम्भीरता है। साक्षात् भगवान महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ मुनि पूज्यपादस्वामी गये थे। पहले के कथन है।

वे कहते हैं कि मैं मेरे आत्मा को राग से भिन्न अपने लक्षण से जानकर, अनुभव करके मेरी जाति के अनुभव से मैं यह बात करूँगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

और वह किसके लिये? आहाहा! **कैवल्य सुख की स्पृहावालों को।** जिसे अकेले आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्दरूपी मोक्ष की जिसे स्पृहा है। आहाहा! ऐसे श्रोताओं को कहूँगा, कहते हैं। जिसके अन्दर में पुण्य के भाव की अभिलाषा है, उसका फल मिले या स्वर्गादि मिले, सेठाई मिले, रागादि मिले—ऐसे स्पृहावाले के लिये यह बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गाथा देखो न!

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥

समीक्ष्य—अनुभव करके। आहाहा! सकल कर्म से रहित ऐसी आत्मा की पूर्णानन्द दशा के जो अभिलाषी हैं, उन्हें मैं कहूँगा। **कैवल्य, अर्थात् विषयों से उत्पन्न नहीं हुए....** आहाहा! पाँच इन्द्रिय की विषय की अभिलाषा से जो सुख है, वह तो दुःख है। आहाहा! जिसे उस विषय की अभिलाषा छूट गयी है.... आहाहा! और जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की दशा की स्पृहा, जिज्ञासा, रुचि है, ऐसी स्पृहावाले जीवों को.... आहाहा! मैं यह आत्मा के अनुभव से आत्मा को कहूँगा। दोनों ओर के जीव का वर्णन किया। कहनेवाले कैसे (होते हैं) और सुननेवाले कैसे (होते हैं) उसके लिये। आहाहा! सुननेवाले को गहरे-गहरे (ऐसा हो कि) हम सुनेंगे, फिर इसमें पुण्य होगा, फिर स्वर्ग के सुख भोगेंगे, ऐसा कहे। नागलपुरवाला, नागलपुर है न नागलपुर? बोटाद के पास नागलपुर नहीं? सलोत, सलोत। विसाश्रीमाली सलोत। स्थानकवासी। उनके केशवजी लड़का था। उसके पिता थे, वे आडतिया का काम करते थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे?

मुमुक्षु : हेमो....

पूज्य गुरुदेवश्री : हेमो सलोत, हेमो सलोत थे। मेमो सलात और हेमो। मेमो सलात बड़े थे और हेमो सलात छोटे थे। वहाँ तो हमारे बोटाद के पास हुआ न नजदीक, वहाँ बहुत बार जाकर आते हैं। वह हेमो सलोत का लड़का था, केशु। वह वहाँ बोटाद गये थे न जब हम, क्या कहलाता है वह लेख? म्युनिसीपलटी के मकान में व्याख्यान

था। उसमें रात्रि में आया था। तब रामजीभाई थे। महाराज! यहाँ कुछ पुण्य करें, यह करें, स्वर्ग के सुख पहले भोगें और फिर मोक्ष में जायेंगे। हमारे हीराजी महाराज के गाँव कहलाये वे सब। नागलपुर, बोटाद, खस और वे सब। आहाहा!

कहते हैं कि जिसे इन्द्रिय के विषय का अन्दर प्रेम है.... आहाहा! उसे दुःख का प्रेम है। आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय सुख की स्पृहा है.... आहाहा! यह उसकी शर्त। ऐसे श्रोताओं को (मैं कहूँगा)। भिन्न-भिन्न ग्रन्थ है न? भिन्न-भिन्न कर्ता ने भिन्न-भिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है। आहाहा!

कैवल्य, अर्थात् विषयों से उत्पन्न नहीं हुए.... यह नास्ति से बात की। परन्तु कैवल्य अर्थात् अकेले ऐसे सुख की अथवा कैवल्य के सुख की स्पृहावाले को मैं कहूँगा। आहाहा! जिसे आत्मा की अतीन्द्रिय सुखदशा ऐसा जो मोक्ष, उसकी जिसे स्पृहा है, ऐसा कहकर यह कहना चाहते हैं कि अतीन्द्रिय सुख की अभिलाषा (वाला जीव) बन्ध से रहित होना चाहता है। समझ में आया? उसे बन्ध होने के भाव का प्रेम नहीं है। आहाहा! उसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय सुख की जिसे स्पृहा है। आहाहा! चाहे तो शरीर की युवा अवस्थावाले हैं। आहाहा! ऐसे जीवों को मैं आत्मा की शान्ति, समाधि जैसे सत्य है, वैसा मैं कहूँगा। आहाहा! फिर तिर्यंच हो या नारकी हो। यहाँ तो सुननेवाले तो मनुष्य और देव दो ही होते हैं। बहुत तो तिर्यंच होते हैं। समझ में आया? परन्तु समझनेवालों में शर्तें यह। आहाहा!

जिसे अकेले अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान आत्मा है, अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट करने की जिसे अभिलाषा है। समझ में आया? विषय के सुख और पुण्य के फल का लक्ष्य जिसे छूट गया है। आहाहा! पूज्यपादस्वामी दिगम्बर सन्त हैं। आहाहा! उनके पैर इन्द्र (और) देव पूजते थे और जिनके चरण में लब्धि ऐसी थी कि अमुक कुछ चोपड़े, वहाँ हिलने लगे। ऐसे चमत्कार बाहर से भी प्रगट हुए। परन्तु उन चमत्कार की अभिलाषावाले जीव की यहाँ बात नहीं है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का अनन्त आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द जिसे पूर्ण प्रगट हुआ है, ऐसे पूर्ण की ही जिसे अभिलाषा है। आहाहा! चन्दुभाई! यह शर्त रखी। सुननेवाले को ऐसा हो तो वह हमारी बात सुन

सकेगा। दूसरे को रुचेगी नहीं। पुण्य खराब, पुण्य जहर और उसके फल भोग भी जहर, यह (बात) नहीं सुहायेगी, अतीन्द्रिय सुख के अभिलाष बिना। समझ में आया? उसे ऐसा कहते हैं कि व्रत, तप और भक्ति का भाव जहर है। उससे बँधनेवाले कर्म वे जहर के वृक्ष हैं। और उनसे फलित हो वह जहर का फल है। आहाहा! वजुभाई! दूसरे ओर की मिठास उड़ा दे तो काम आवे, ऐसा यहाँ कहते हैं।

भावार्थ - श्री पूज्यपादस्वामी प्रतिज्ञारूप से कहते हैं कि मैं श्रुत द्वारा, युक्ति अनुमान द्वारा.... पाठ है न? **'श्रुतेन लिंगेन' और चित्त की एकाग्रता द्वारा,....** अन्तःकरण आया, **'समाहितान्तः करणेन'** है न? **शुद्धात्मा को यथार्थ जानकर तथा उसका अनुभव करके, निर्मल अतीन्द्रियसुख की भावनावाले भव्यजीवों को मेरी शक्ति अनुसार शुद्ध आत्मा के स्वरूप को कहूँगा।** विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)